श्रीहेमचन्द्राचार्यनी आगमवाणी

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' ए हेमचन्द्राचार्यनो रचेलो, ३६००० श्लोक प्रमाण महाकाव्यग्रन्थ छे. दश पर्वोमां पथरायेल आ महाकाव्यमां जैनोना २४ तीर्थङ्कर तथा १२ चक्रवर्ती राजा समेत ६३ शलाकापुरुषोनां कथाचरित्रोनुं वर्णन छे. ते ग्रन्थना १०मा पर्वना अन्त भागमां तेमणे, हवे पछीनो समय केवो हशे तेनी आगाही कहो के भविष्यकथन, आपेल छे. वर्तमान परिस्थिति साथे तेमनी ते भविष्यवाणी महदंशे मेळ खाती होवाथी ते श्लोको अनुवाद साथे अत्रे आपेल छे. श्लोकोने १-१६ क्रमाङ्क वाचकोनी सुगमता खातर ज आप्या छे. मूळ क्रमाङ्क जुदा छे.

आ आगाहीओनी सच्चाई विषे विचारीए तो - लोकमां कजिया-कंकासनी वृद्धि अने मर्यादालोप (श्लोक १) आजे व्यापकपणे अनुभवाय छे. भारतवर्षनी आर्य प्रजामां, विशेषे गुजरात-मारवाडनी प्रजामां जे सहज अहिंसा तथा दयादानना संस्कारो हता ते, विधर्मीओना नठोर सहवास थकी नामशेष थवामां छे (श्लोक २). गामडां पडी भांग्यां छे, अने शहेरोमां थती गीचताने लीधे चारेकोर भूतावळ नाचती होय तेवुं लागवा मांड्युं ज छे. गृहस्थो, खेडूतो, कणबीवर्ग पोताना खेती आदि व्यवसाय छोडीने नोकरी शोधवा फरे छे ज. अने शासकोनी क्रूरताथी प्रजा क्यां अजाण छे (श्लोक ३)?

आपणा समाजमां मत्स्य न्याय आजे प्रवर्ते छे ज. दा.त. पोलिसकर्मी ज्यारे हप्ता उघरावे छे त्यारे तेना शिरे छेक सर्वोच्च व्यक्ति सुधी हिस्सो पहोंचाडवानी जवाबदारी होय छे. आ मत्स्य न्याय नथी तो शुं छे ? आवुं तो बधा ज क्षेत्रमां जडशे (श्लोक ४). अस्पृश्यतानिवारणना मनुष्यहितकारी आन्दोलनथी लईने आधुनिक अनामतपद्धतिना राजकारणनी वास्तविकतानुं निरीक्षण करीए तो, अने बे विश्वयुद्धो, भारतना भागला, इराक पर आक्रमण वगेरे बनावोना सन्दर्भ याद राखीए तो, श्लोक ५ मांनी वात समजाई जशे.

श्लोक ६नी दरेक वातनो अनुभव आपणे निरन्तर करीए ज छीए. श्लोक ७मां आपणा साम्प्रत स्वार्थी समाजनुं मार्मिक चित्रण थयुं छे. तो ८मा

श्लोकमां गुरु–शिष्यना सम्बन्धो तथा परम्परामां आजे आवी गयेली विरसता प्रत्ये संकेत थयो छे. जरा वधु व्यापकताथी जोईए तो शाळा–कॉलेज–युनिवर्सिटीओमां विद्यार्थीओने प्राध्यापको प्रत्ये आदर क्यां बच्यो छे ? तो प्राध्यापकवर्ग पण तेमने भणावे छे खरो ? आ स्थितिमां गुरुकुलवास क्यां टके (श्लोक ९) ? धरती खोदी काढी, पहाडो तोड्या, वनो काप्यां, आथी जन्तुओने रहेवानां स्थानो नष्ट थयां. हवे ते जन्तुओ आपणी वसतिमां न आवे, न उभराय तो क्यां जाय ?

आ काळमां देवो केम आवता नथी ? आपणने आटली तकलीफो छे, धर्मने घणी जरूर पण छे, तो देवो फरज समजीने पण के दयाभावथी पण केम न आवे ? खरेखर देवो हशे ज नहि ! – आ प्रकारनी विकल्पजाळ दरेक व्यक्तिना चित्तमां प्रगटती होय छे. आचार्ये एक ज वाक्यमां तेनो जवाब आपी दीधो छे (श्लोक १०). पिता–माताने छेह देवो, घरडांघरने हवाले करवां इत्यादि घटमाळनी तेमज सासु–वहू वच्चे जोवा मळता विसंवादनी वात पण तेमणे आ ज श्लोकमां करी छे.

११मो श्लोक जरा आकरो लागे. परन्तु आजनी स्त्रीमां, युवतीमां जे छाकटापणुं, अंगोनुं प्रदर्शन करतां वस्त्रोनी फेशन, स्थल–समयनी तथा नाना–मोटानी मर्यादा तूटे ते रीते करवामां आवतां चेनचाळा के नखरां – आ बधुं जोईए छीए त्यारे आचार्यनुं दर्शन केटलुं दूरगामी हतुं ते समजाई शके छे.

१२मा श्लोकनो सम्बन्ध जैन धर्म साथे खास छे. आजे श्रावक–श्राविका क्यां रह्यां छे ? वाणिया छे, भक्तजनो छे, धर्मी लोको पण हशे; परन्तु जैन धर्मना तमाम व्रतनियमोनुं ग्रहण तथा पालन करनारा जनो क्यां छे ? तो दान–शील–भावनी शास्त्रवर्णित स्थिति पण भाग्ये ज जोवा मळे. दान सोदाबाजी जेवां लागे–घणीवार, तो तप तो वेचाऊ चीज जेवुं बनावी देवायुं छे ! शील प्रत्ये भारोभार दुर्लक्ष्य छे. संघोमां संघजमण थाय तेमां पण भक्षाभक्ष्यविवेक, जयणापालन वगेरे नथी सचवातां. फलतः संयमीओ ते रसोई ग्रहण न करे, तो कोईनुं रूंवाडुं य न फरके ! एमने न लेवुं होय तो आपणे शुं करीए ? अथवा खोटुं बोलीने आपे. आ स्थितिनुं मार्मिक बयान १२ मो श्लोक आपी जाय छे.

१३ मा श्लोकमांनी ४-५ वातोनो स्वानुभव सहुने छे. १४-१५मा श्लोकोमां कहेवायेली वातो पण आजे अनुभवसिद्ध छे.

आश्चर्य एटलुं ज थाय छे के २० मा शतकमां पेदा थनारी परिस्थितिनुं आटलुं बधुं वास्तवदर्शी अने सचोट वर्णन १२ मा सैकामां एमणे केवी रीते कर्युं हशे ? शुं आवी भविष्यदर्शी दृष्टिने लीधे ज तेओ 'कलिकालसर्वज्ञ' कहेवाया हशे ? अस्तु.

✵

अतः परं दुःषमायां कषायैर्लुप्तधर्मधीः ।
भावी लोकोऽपमर्यादोऽत्युदकक्षेत्रभूरिव ॥१॥

हवे पछीना दुःखमय समयमां, लोको, कषायोनी बहुलताने लीधे, धर्मबुद्धिथी भ्रष्ट थशे; हद करतां वधु पाणीनो भरावो थतां जेम धरती पोतानी मरजाद छोडे तेम लोको पण मर्यादाभ्रष्ट थई जशे.

यथा यथा यास्यति च कालो लोकस्तथा तथा ।
कुतीर्थिमोहितमति-र्भाव्यहिंसादिवर्जितः ॥२॥

जेम जेम समय वीततो जशे, तेम तेम लोकोनी मति, विधर्मीओना सहवासने कारणे मूढ थशे, अने लोको अहिंसा जेवां तत्त्वोथी भ्रष्ट थशे.

ग्रामः श्मशानवत् प्रेतलोकवन्नगराणि च ।
कुटुम्बिनश्चेटसमाः यमदण्डसमा नृपाः ॥३॥

पछी गामडां श्मशान जेवां बनशे, नगरो प्रेतलोक जेवां भासशे. घरमालिको-खेडूतो नोकर बनशे, अने राजाओ (शासको) जमराजा जेवा (क्रूर, जीवलेण) बनी जशे.

लुब्धा नृपतयो भृत्यान् ग्रहीष्यन्ति धनं निजान् ।
तद्भृत्याश्च जनमिति मात्स्यो न्यायः प्रवर्त्स्यते ॥४॥

लोभी राजाओ (शासको) पोताना नोकरोनुं धन पडावी लेशे; तो ते नोकरो प्रजाजनने लूंटी लेशे; आम मत्स्यगलागल न्याय प्रवर्तशे.

येऽन्त्यास्ते भाविनो मध्ये ये मध्यास्तेऽन्तिमाः क्रमात् ।
देशाश्च दोलायिष्यन्ते नावोऽसितपटा इव ॥५॥

जेमनुं स्थान छेवाडे होय ते वच्चे आवी विराजशे, अने वच्चे स्थान धरावनाराओ छेवाडे धकेलाई जशे. देशो अस्थिर थई जशे – सढ विनानां वहाणनी जेम.

चौर्या चौराः पीडयिष्यन्त्युर्वीं भूपाः करेण तु ।
श्रेण्यो भूतग्रहप्राया लञ्चालुब्धा नियोगिनः ॥६॥

चोरलूंटारा चोरी करीने प्रजाने पीडशे, अने राजाओ (शासको) करवेरा नाखीने पीडशे. शेरीओ जाणे भूत वळग्यां होय तेवी – सूमसाम थई जशे; अधिकारीओ लांचिया थशे.

भावी विरोधी स्वजने जनः स्वार्थैकतत्परः ।
परार्थविमुखः सत्यदयादाक्षिण्यवर्जितः ॥७॥

लोको अत्यन्त स्वार्थी अने स्वजनो साथे पण विरोधवाळा थशे; परोपकारथी विमुख तेमज सत्य, दया, दाक्षिण्य जेवा गुणो विनाना हशे.

गुरून्नाराधयिष्यन्ति शिष्याः शिष्येषु तेऽपि हि ।
श्रुतज्ञानोपदेशं न प्रदास्यन्ति कथञ्चन ॥८॥

शिष्यो गुरुनो आदर नहि करे; सामे पक्षे गुरुओ पण शिष्योने ज्ञाननो उपदेश नहि आपे.

एवं गुरुकुलवासः क्रमादपगमिष्यति ।
मन्दा धीर्भाविनी धर्मे बहुसत्त्वाकुला च भूः ॥९॥

आम थतां, धीमे धीमे (शिष्योनो) गुरुकुलवास समाप्त थशे. धर्मने विषे लोकनी बुद्धि–सद्भाव मन्द पडी जशे. पृथ्वी अनेक जन्तुगणथी छलकाशे.

न साक्षाद् भाविनो देवाः विमंस्यन्ते सुताः पितॄन् ।
सर्पीभूताः स्नुषाः श्वश्र्वः कालरात्रिसमाः पुनः ॥१०॥

देवो प्रत्यक्ष दर्शन नहि आपे. सन्तानो वडीलोने अवगणशे. पुत्रवधूओ नागण जेवी, तो सासुओ कालरात्रिसमान–क्रूर बनशे.

दृग्विकारैः स्मितैर्जल्पै - र्विलासैरपरैरपि ।
वेश्यामनुकरिष्यन्ति त्यक्तलज्जाः कुलस्त्रियः ॥११॥

खानदान परिवारनी स्त्रीओ पण, आंखना उलाळा, हांसी, प्रलापो, अने बीजा चेनचाळा करती हशे अने तेने लीधे ते निर्लज्ज जेवी लागशे.

श्रावकश्राविकाहानि-श्चतुर्धा धर्मसंक्षयः ।
साधूनामथ साध्वीनां पर्वस्वप्यनिमन्त्रणम् ।।१२।।

श्रावक अने श्राविकानी खोट पडशे — नहि मळे. (अथवा तो, श्रावक-श्राविकावर्गने नुकसान थशे.) दान आदि चार प्रकारनो धर्म क्षीण थशे. साधु-साध्वीओने पर्वदिनोमां पण कोई नहि बोलावे. (पोताना त्यां प्रसंग होय अने संघजमण के जमण आदि होय तेवे वखते पण साधु-साध्वीने कोई वहोरवा बोलावशे नहि).

कूटतुला कूटमानं शाठ्यं धर्मेऽपि भावि च ।
सन्तो दुःस्थीभविष्यन्ति सुस्थाः स्थास्यन्ति दुर्जनाः ।।१३।।

खोटां तोल-मापना ज व्यवहारो चालशे. धर्ममां पण शठता - लुच्चाई अने ठगाई चालशे. सज्जनो दुःखी थशे अने दुर्जनो लहेर पामशे.

मणिमन्त्रौषधीतन्त्रविज्ञानानां धनायुषाम् ।
फलपुष्परसानां च रूपस्य वपुरुन्नतेः ।।१४।।

धर्माणां शुभभावानां चान्येषां पञ्चमे ह्यरे ।
हानिर्भविष्यति ततोऽप्यरे षष्ठेऽधिकं खलु ।।१५।।

मणि, मन्त्र, औषध, तन्त्रविज्ञान, धन, आयुष्य, फल अने पुष्पना रस, शरीरनुं रूप, देहनी ऊंचाई, अने बीजा पण धर्मो तथा शुभभावो - आ बधांयनी, आ पंचम काळमां - दुःखमय समयमां, हानि थशे. जो के पछीना - छठ्ठा काळमां तो तेथी पण अधिक हानि थशे.

क्रमादेवं क्षीयमाणपुण्ये काले प्रसर्पति ।
धर्मे धीर्भाविनी यस्य सफलं तस्य जीवितम् ।।१६।।

आम, धीमे धीमे पुण्यनो ह्रास थतो जशे. एवा समयमां जेनुं मन धर्ममां परायण हशे तेनुं जीवतर सफल बनशे.

—x—

श्रीहेमचन्द्राचार्य विरचित प्रमाणमीमांसाना परिप्रेक्ष्यमां मतिज्ञानना उत्पत्तिक्रमनी विचारणा

- मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य विरचित प्रमाण-मीमांसा जैनदर्शन सम्मत प्रमाणव्यवस्थानी चर्चा करता ग्रन्थोमां महत्त्वनुं स्थान धरावे छे. आ ग्रन्थनो बहु ओछो अंश उपलब्ध होवा छतां, एना गम्भीर प्रतिपादन तेमज मौलिक विचारणाओने लीधे भारतवर्षना दार्शनिक क्षेत्रे एनुं प्रदान बहुमूल्य गणाय छे. आम तो कलिकालसर्वज्ञना ग्रन्थोमां मुख्यत्वे प्राचीन परम्पराओनो सर्वग्राही व्यवस्थित संग्रह करवानुं वलण जणाय छे. परन्तु प्राचीन परम्पराने योग्य परिष्कार करीने ज तेओ स्वीकारे छे ते तेओनी लाक्षणिकता छे. प्र.मी.-गत मतिज्ञान एटले के इन्द्रिय अने मनथी जन्य प्रत्यक्षनुं निरूपण ए दृष्टिए बहु ध्यानार्ह छे. आ निरूपण आगमिक परम्परा अनुसार ज होवा छतां एने वधु तर्कसंगत बनाववा एमां केटलाक परिष्कार करवामां आव्या छे. आ निरूपणने केन्द्रमां राखी आपणे क्रमशः नीचेना मुद्दाओ तपासीशुं :

१. मतिज्ञानोत्पत्तिनुं आगमिक वर्णन (आगमिक परम्परा)
२. मतिज्ञानोत्पत्तिनुं प्र.मी.गत वर्णन (तार्किक परम्परा)
३. ए बन्ने वच्चे मुख्य भिन्नता
४. भिन्नतानां सम्भवित कारणो
५. उपलब्ध थती बे परम्परा वच्चेनी चर्चा
६. बे परम्पराओनो सम्भवित समन्वय
७. प्र.मी.ना निरूपणनी केटलाक जैन ग्रन्थो साथे तुलना

मतिज्ञानोत्पत्तिनुं आगमिक वर्णन

आगमिक परम्पराने सम्मत मतिज्ञानना उत्पत्तिक्रमनुं विशद वर्णन वि.भाष्यमां[१] मळे छे. तदनुसार श्रोत्र, घ्राण, रसन अने स्पर्शन - आ चार प्राप्यकारी[२]

१. गाथा १७८-३५४

२. जे इन्द्रिय विषय साथे संयुक्त थया पछी ज बोध करवा समर्थ बने छे ते इन्द्रिय प्राप्यकारी कहेवाय छे. चक्षु अने मन अप्राप्यकारी छे.

इन्द्रियोनो सौ प्रथम पोतपोताना विषयभूत पुद्‌गलस्कन्धो साथे संयोग थाय छे. आ संयोग साथे ज ज्ञान उत्पन्न थाय छे. पण अेनी मात्रा अेटली बधी अल्प होय छे के अे ज्ञान प्रमाताने खुदने जणातुं नथी. पछी क्रमशः वधु ने वधु पुद्‌गलस्कन्धो साथे सम्बन्ध जोडातो जाय तेम मात्रा वधतां वधतां अन्तर्मुहूर्तकाळे, 'आ शब्द छे, आ घटपदवाच्य छे' अेवा तमाम विशेषोथी रहित फक्त महासामान्यने विषय बनावनारो, 'कंइक छे' अेवो आकार ते ज्ञानमां रचाय छे. आ आकार जे समये रचायो ते समयथी प्रमाताने ज्ञाननो ख्याल आववा मांडे छे; तेथी आवी विशिष्ट व्यक्त ज्ञानमात्राने पूर्वनी असंख्य अव्यक्त ज्ञानमात्राओथी अलग पाडवा 'अर्थावग्रह'ना नामे ओळखवामां आवे छे. अने ते पहेलांनी तमाम अव्यक्त ज्ञानमात्राओ संयुक्तरूपे [१]'व्यञ्जनावग्रह' नामे ओळखाय छे. बन्ने स्थाने 'अवग्रह'नो अर्थ 'अत्यन्त अल्पज्ञान' थाय छे. 'व्यञ्जन' अने 'अर्थ' शब्दोनुं तात्पर्य आपणे आगळ समजीशुं.

चक्षु अने मनने बोध माटे पोताना विषयभूत पदार्थ साथे संयोगनी अपेक्षा नहीं होवाथी[२], तज्जन्य प्रत्यक्षमां सीधो ज 'कंइक छे' अेवो आकार रचाय छे. माटे अे बे स्थळे अर्थावग्रहथी ज ज्ञानोत्पत्तिनी प्रक्रिया आरम्भाय छे.

अर्थावग्रहमां 'कंइक छे' अेवो बोध थाय अेटले तरत ज 'शुं हशे ? श्रोत्रग्राह्य छे माटे शब्द होवो जोईअे, घ्राणग्राह्य नथी माटे गन्ध न होई शके' आवी अन्तर्मुहूर्त सुधी चालनारी विचारणा आरम्भाय छे. दरेक इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षनी उत्पत्ति-प्रक्रियामां अर्थावग्रहथी मन पण साथे जोडातुं होवाथी[३] आ विचारणा शक्य बने छे. आ विचारणा अन्वयधर्मोना[४] अस्तित्वनी अने व्यतिरेकधर्मोना अभावनी सिद्धि द्वारा वस्तुना निश्चय तरफ दोरी जती होवाथी 'संशय' नहीं, पण 'ईहा' कहेवाय छे.

आ विचारणाने अन्ते वाचकशब्दना उल्लेख सहित जे विशेषनो[५]-

---

१. व्यञ्जनावग्रहना विशेष स्वरूप माटे जुओ जै.त.-परि. ६

२. चक्षु अने मनना अप्राप्यकारित्वनी सिद्धि माटे जुओ तत्त्वार्थ०-१.१९, जै.त.-परि. ७

३. ''श्रोत्रादीन्द्रियव्यापारकालेऽपि मनोव्यापारस्य व्यञ्जनावग्रहोत्तरमेवाऽभ्युपगमात् ।''
-जै.त.-परि.७

४. वस्तुमां रहेनारा धर्मो अन्वयधर्मो अने नहीं रहेनारा धर्मो व्यतिरेकधर्मो गणाय छे.

५. अपायमां केटला विशेषो प्रकार बने ? ते माटे जुओ ज्ञानबिन्दु-परि. ४६

शब्दत्व व.नो निश्चय थाय छे ते 'अपाय'[१] कहेवाय छे. 'आ शब्द छे' व. आकारनो आ निश्चय अन्तर्मुहूर्त सुधी टके छे.

त्यारबाद त्रण विकल्प सम्भवे छे : १. अपायनी विषयभूत वस्तु जो त्यारे उपेक्षणीय होय तो त्यां ज आ प्रक्रिया थंभी जाय अने नवी वस्तु माटे प्रक्रिया आरम्भाय. २. जेनो निश्चय थयो होय तेना ज विशेषो विशे आगळ विचारणा चाले. दा.त. 'आ शब्द स्त्रीनो हशे के पुरुषनो ?' आ संजोगोमां अपाय ए आगळना अपायनी अपेक्षाए अर्थावग्रह गणाय छे, के जेने नैश्चयिक अर्थावग्रहथी अलग पाडवा 'व्यावहारिक अर्थावग्रह' कहेवामां आवे छे. निश्चय → विचारणा → निश्चयनी आ परम्परा क्यां सुधी लंबाय ते व्यक्तिनी जिज्ञासा पर आधार राखे छे. ३. घणीवार, खास करीने इष्ट वस्तुमां, 'आ शब्द छे, आ शब्द छे' एवा प्रकारनो निश्चय वारंवार थया करे छे. आ धारावाहिक-ज्ञानपरम्परा 'अविच्युति धारणा' तरीके ओळखाय छे. आ त्रणे विकल्पो कोई पण अपाय पछी सम्भवी शके छे.

अविच्युति धारणा, प्रमातानुं ध्यान अन्य वस्तुमां खेंचाय अने नवी ज्ञानोत्पत्तिनी प्रक्रिया आरम्भाता नष्ट थाय तो पण, आत्मामां पोतानी छाप छोडती जाय छे. आ छाप 'संस्कार' अथवा 'वासना' नामनी धारणा गणाय छे, के जे स्मृतिना आवारक कर्मना क्षयोपशमरूप अथवा स्मृतिज्ञानोत्पादक शक्तिरूप छे.

कालान्तरे कोई उद्बोधक सांपडे तो संस्कार उद्बुद्ध थतां आपणने पूर्वे अनुभवेला पदार्थनी जे याद आवे ते 'स्मृति धारणा' कहेवाय छे.

मतिज्ञानना भेदोनी गणतरी वखते 'निश्चयनुं अवधारण ए धारणा' एवी व्याख्या बनावी त्रणे धारणाओने एक ज भेदमां समावी देवामां आवे छे. अने माटे धारणानुं कुल काळमान असंख्य वर्षोनुं गणाय छे.

ज्ञानोत्पत्तिनी आ प्रक्रियाना बधा ज तबक्का क्रमशः आ रीते ज थाय छे. अतिपरिचित वस्तुमां सीधो अपाय थयो होवानुं आपणने जणाय अने बधा तबक्कानो स्पष्ट ख्याल न पण आवे; परन्तु त्यां पण आ समग्र प्रक्रिया शीघ्रपणे अवश्य थई ज होय छे. आ क्रममां कशुं आगळ-पाछळ थवानो सम्भव नथी ते पण स्पष्ट जोई शकाय छे. हा, वधु ध्यानार्ह वस्तुविषयक ज्ञाननी नवी प्रक्रिया आरम्भाय तो जूनी वच्चेथी अटकी जाय तेम बने. पण

१. 'अपाय' कहेवाय के 'अवाय' ? ते माटे जुओ त.वा.-१.१५.१३

आत्मा अेक क्षण माटे पण ज्ञानविहोणो सम्भवतो नथी, माटे आ प्रक्रियानो कोईने कोई तबक्को आत्मामां हरहंमेश प्रवर्तमान होय छे.[१]

मतिज्ञानोत्पत्तिनुं प्र.मी.गत वर्णन[२]

सौ प्रथम द्रव्यात्मक के भावात्मक इन्द्रियोनो[३] पोताना विषय साथे, अप्राप्यकारी इन्द्रियोमां 'अनतिदूर-अव्यवहित देशमां विषयनुं होवुं, अेना प्रत्ये ध्यान जवुं' व. रूप वैज्ञानिक अने प्राप्यकारी इन्द्रियोमां संयोगात्मक वास्तविक सम्बन्ध-'अक्षार्थयोग' स्थपाय छे. आ सम्बन्धने लीधे अर्थ अने ज्ञानमां विषय-विषयिपणानी योग्यता जन्मे छे, के जे ज्ञानोत्पत्तिनी प्रक्रियाने शरू करे छे. आ प्रक्रिया आगळ वधतां ज्ञानमां अेक तबक्के 'कंइक छे' अेवो भास थाय छे. आटली मात्रावाळुं ज्ञान वस्तुना सामान्याकारने[४] ज विषय बनावे छे, विशेषोने नहीं; तेथी 'दर्शन'[५] तरीके ओळखाय छे.

आ दर्शन ज ज्ञानमात्रानी क्रमशः वृद्धिथी अन्तर्मुहूर्तकाळे 'आ शब्द छे' अेवा अवग्रहरूपे[६] परिणमे छे. अवग्रह अन्तर्मुहूर्तकालीन होय छे. अहींथी अर्थनो सम्यक् के असम्यक् निश्चय थवानी शरुआत थती होवाथी ज्ञान 'प्रमाण' के 'अप्रमाण' तरीके गणावानुं चालु थाय छे.

अवग्रह पछी 'आ अवाज शंखनो हशे के नगारानो ?' आवा प्रकारनो संशय पेदा थाय छे अने तेने लीधे 'अवाज अेकधारो आवे छे, माटे शंखनो होय, नगारानो नहीं' आवी विचारणा प्रवर्ते छे. संशय अर्थनिर्णयात्मक नहीं होवाथी प्रमाणना भेदोमां अेनी गणतरी नथी थती.

थयेली विचारणा-ईहाने[७] अन्ते 'आ शंखनो अवाज छे' आवो निश्चय-

---

१. मतिज्ञान माटे जरूरी क्षयोपशम-प्रक्रिया माटे जुओ ज्ञानबिन्दु - परि. ८-१३
२. प्र.मी. (सटीक) - १.१.२६-२९
३. द्रव्येन्द्रिय अने भावेन्द्रियना स्वरूप माटे जुओ तत्त्वार्थ - २.१७-२०
४. 'कंइक छे' अे प्रतीतिमां फक्त वस्तुगत सत्त्व ज भासित थाय छे, माटे अेने महासामान्यनी ग्राहक मानवामां आवे छे.
५. कोई व्यक्तिने घणा वखत पछी मळीए तो आपणे बोलीए छीए-''में एने जोयो(=दर्शन थयुं), पण ओळख्यो नहीं (=अे व्यक्ति रूपे ज्ञान न थयुं.)'' आमां दर्शन शब्द जे सामान्य प्रतीति सूचवे छे, तेवो ज भाव अहीं होई शके.
६. दर्शन अने अवग्रहमां तफावत माटे जुओ त.वा. - १.१५.१३
७. ईहा अने ऊहमां तफावत माटे जुओ प्र.मी. १.१.२७ टीका

अपाय थाय छे. आ निश्चय अमुक काळ सुधी टकी पछी नष्ट थई जाय छे. पण नष्ट थतां पूर्वे आत्मामां स्वसमानविषयक[१] संस्कार मूकी जाय छे. आ संस्काररूपे ज निश्चय आत्मामां टकी रहेतो होवाथी ते धारणा कहेवाय छे. स्मृतिमां हेतुभूत आ संस्कार प्रत्यक्षप्रमाणना भेदरूप होवाथी, ज्ञानोत्पादक होवाथी अने ज्ञानमय आत्माना धर्मरूप होवाथी एने ज्ञानात्मक ज मानवो जोईअे.

आ समग्र प्रक्रियाना अलग-अलग तबक्का समजाववा पूरता ज देखाड्या छे. वास्तवमां तो क्रमशः वधती मात्रावाळुं अेक ज ज्ञान होय छे. जेम के अवग्रह पोते ज ईहारूपे परिणमे छे अेम समजवानुं छे, नहीं के अवग्रह ईहा जन्मावीने नाश पामी जाय छे.[२] अक्षार्थयोग→दर्शन→अवग्रह→ईहा→अपाय→ धारणा - अे ज क्रम बधे सम्भवे छे.

वि.भाष्य अने प्र.मी.ना निरूपण वच्चे मुख्य भिन्नता

जैनदर्शनमां मतिज्ञानोत्पत्तिनी प्रक्रियानी बे मुख्य परम्परा जोवा मळे छे - १. आगमिक २. तार्किक. वि.भाष्यनुं निरूपण आगमिक परम्पराने अनुसारे छे, ज्यारे प्र.मी. आगमिक परम्परानुं परिष्कृत स्वरूप धरावती तार्किक परम्पराने अनुसरे छे. माटे अे बे ग्रन्थ वच्चेना तफावतने आपणे बे परम्परा वच्चेना तफावत तरीके जोई शकीअे. आ भिन्नता मुख्यत्वे नीचे मुजब छे :

आगमिक परम्परा	**तार्किक परम्परा**
१. चक्षु अने मनमां सीधो अर्थावग्रह थाय छे. अर्थावग्रह पहेलाना व्यञ्जनावग्रहनी जरूरियात बाकीनी चार इन्द्रियने ज छे.[३]	१. चक्षु अने मनमां पण अर्थावग्रह पहेलां विषय साथेनो सम्बन्ध जरूरी छे.[४]
२. व्यञ्जनावग्रह पछी सीधो अर्थावग्रह थाय छे.[५]	२.अक्षार्थयोग(-व्यञ्जनावग्रहस्थानीय)→ दर्शन→अवग्रह-आवो क्रम छे.[६]

---

१. जे वस्तुनो अनुभव थाय तेनो ज संस्कार पडे छे. माटे अे अनुभवनो समानविषयक होय छे.

२. ईहा अवग्रहजन्य के इन्द्रियजन्य ? अेवी त.वा. १.१५.१३नी चर्चा अत्रे जोवा जेवी छे.

३. वि.भाष्य - गाथा २०४

४. प्र.मी. - १.१.२६ टीका

५. वि.भाष्य - गाथा २५९

६. ''०अक्षार्थयोगे सति दर्शनम् - अनुल्लिखितविशेषस्य वस्तुनः प्रतिपत्तिः, तदनन्तरम्... अर्थग्रहणम्'' - प्र.मी. - १.१.२६ टीका

३. अर्थावग्रह अेकसामयिक अने अव्यक्तसामान्यनो ग्राहक होय छे.[१]	३. अवग्रह अन्तर्मुहूर्तकालीन अने प्राथमिक विशेषोनो ग्राहक होय छे.[२]
४. अर्थावग्रह पछी तरत ज ईहा शरु थाय छे.[३]	४. ईहा संशयपूर्वक ज होय छे. माटे अवग्रह → संशय → ईहा – आवो क्रम छे.[४]
५. अविच्युति, वासना अने स्मृति– अेम त्रण धारणा छे.[५]	५. धारणा अेकमात्र वासनारूप ज छे.[६]
६. व्यञ्जनावग्रह प्रमाणरूप छे.[७]	६. अक्षार्थयोग (अने दर्शन पण) प्रमाणकोटिनी बहार छे.[८]
७. व्यञ्जनावग्रह, नैश्चयिक अर्थावग्रह अने व्यावहारिक अर्थावग्रह–अेम त्रण जातना अवग्रह होय छे.[९]	७. अवग्रह अेक ज प्रकारनो होय छे.[१०]

भिन्नतानां सम्भवित कारणो :

आगमिक परम्पराथी अलग निरूपण शा माटे करवामां आव्युं ? तेनां कारणो कोई तार्किक ग्रन्थमां लगभग मळतां नथी, पण होवां तो जोईअे ज. अने अेनुं कारण अे छे के अवग्रह पूर्वे दर्शन होय छे – अे दिगम्बर मतनुं

---

१. वि.भाष्य – गाथा २७०–२७२

२. ''अवग्रहादयस्तु त्रय आन्तर्मौहूर्तिकाः'' – प्र.मी. – १.१.२९ टीका, ''अवग्रहगृहीतस्य शब्दादेरर्थस्य...'' – प्र.मी. – १.१.२७ टीका

३. ''इय सामण्णग्गहणाणंतरमीहा'' – वि.भाष्य – गाथा २८९

४. प्र.मी. – १.१.२७

५. वि.भाष्य – गाथा २९१

६. ''स्मृतिहेतुर्धारणा... संस्कार इति यावत् ।'' – प्र.मी. – १.१.२९ टीका

७. वि.भाष्य–गाथा १७८, १९३. आमां व्यञ्जनावग्रहने 'अवग्रह'नामना मतिज्ञानना भेदमां समावायो छे.

८. ''निर्णयः ... अविकल्पकत्वरहितं ज्ञानम् ।'' – प्र.मी. – १.१.२ टीका, ''निर्णयो न पुनरविकल्पकं दर्शनमात्रम् । ''– प्र.मी. – १.१.२६ टीका

९. वि.भाष्य – गाथा १९३, २८५

१०.''अर्थस्य – द्रव्यपर्यायात्मनोऽर्थक्रियाक्षमस्य ग्रहणम्... अवग्रहः ।''–प्र.मी.–१.१.२६ टीका

वि.भाष्य जेवा प्रतिष्ठाप्राप्त ग्रन्थमां कडक शब्दोमां निरसन होवा छतां,[१] तमाम श्वेताम्बर तार्किक ग्रन्थो अे ज मतने अेक अवाजे स्वीकारे[२]– अे कंइ वगर कारणे तो न ज होय. आ कारणो कदाच नीचे मुजब होई शके :

१[३]. आपणुं ध्यान बीजे होय तो वस्तु आंख सामे होवा छतां आपणने अेनो बोध नथी थतो. अे ज रीते कोईक वार आंख सामेनी वस्तु माटे पण 'मने नथी जडतुं' अेम आपणे बोलतां होईअे छीअे. आ वात सूचवे छे के आंख सामे वस्तु आवी अेटले सीधो अेनो 'कंइक छे' अेवो बोध – अर्थावग्रह थई ज जाय अे जरूरी नथी. पण बोध माटे आंख अने वस्तु वच्चे चोक्कस प्रकारनो सम्बन्ध स्थपावो आवश्यक छे. नहीं तो सम्बन्ध स्थपाया वगर ज जो बोध थई जतो होय तो, आंख खुल्ली होय त्यारे सतत चाक्षुषज्ञान थतुं रहे अने आपणे बीजी कोई इन्द्रियथी बोध ज न करी शकीअे. आ सम्बन्ध भले नाक अने गन्धद्रव्यनी वच्चे स्थपाता सम्बन्धनी जेम संयोगरूप न होय अने तेथी तेने 'व्यञ्जनावग्रह' न कहीअे; पण अेथी कंइ आ सम्बन्धनी चोक्कस भूमिकाने उवेखी शकाय नहीं, अने चाक्षुष प्रत्यक्षमां सीधी अर्थावग्रहथी ज शरूआत थाय छे अेम कही शकाय नहीं. भले आ सम्बन्ध ज्ञानात्मक न होय; पण जो व्यञ्जनावग्रहने उपचारथी ज्ञानरूप मानी[४] अेनो श्रोत्रादिज्ञाननी उत्पत्ति–प्रक्रियामां समावेश थई शकतो होय, तो चाक्षुषनी प्रक्रियामां आ सम्बन्धने गणतरीमां न लेवानुं कोई कारण नथी. मानस प्रत्यक्षमां पण अे रीते विचारी शकाय.

२. आगमिक व्यवस्थामां सौथी मोटी मूंझवण दर्शनना मुद्दे रहे छे. अेक तरफ छद्मस्थने पहेलां अन्तर्मुहूर्त सुधी दर्शन–निराकारोपयोग होय अने

---

१. गाथा २७४–२७९

२. ''अक्षार्थयोगे दर्शनानन्तरमर्थग्रहणमवग्रहः'' – प्र.मी. – १.१.२६, ''विषयविषयिसन्निपातानन्तरसमुद्भूतसत्तामात्रगोचरदर्शनाज्जातमाद्यं०'' – प्र.न. १.७. सन्मतितर्कटीकामां पण अेम ज छे.

३. पृ. १९–२० पर दर्शावेली भिन्नताओनो आ क्रमाङ्क छे.

४. अर्थावग्रहनुं उपादानकारण व्यञ्जनावग्रह छे माटे व्यञ्जनावग्रह ज्ञानरूप छे अेम स्वीकारवामां आवे छे. जो के अेक पक्ष अे संयोग साथे प्रकटती अल्प ज्ञानमात्राने व्यञ्जनावग्रह गणे छे, पण अे पक्षे चक्षुरिन्द्रियमां पण अर्थावग्रहथी पूर्वे अल्प ज्ञानमात्रा मानवी जरूरी छे. आ अल्पज्ञानमात्रानो काळ प्राप्यकारी इन्द्रिय करतां ओछो होय अेम बने.

त्यारबाद अन्तर्मुहूर्त ज्ञान-साकारोपयोग होय आवो आगमिक परम्परामां दृढ नियम छे[१]; तो बीजी तरफ उपर जणाव्युं तेम मतिज्ञानोत्पत्तिनी व्यञ्जनावग्रहथी धारणा सुधीनी आगमिक व्यवस्थामां दर्शनने तो क्यांय स्थान ज नथी ! आ संजोगोमां आना त्रणेक उकेल सूचवाया छे; पण अे तर्कनी कसोटीअे पार उतरे तेम नथी. १. 'मतिज्ञाननी उत्पत्तिनी शरुआत व्यञ्जनावग्रहथी थाय छे, माटे दर्शनने व्यञ्जनावग्रहनुं पण पूर्वचरण समजवुं जोईअे.' आ उकेल तो स्पष्टतः अयुक्त छे, कारण के इन्द्रिय-अर्थना संयोग साथे जन्मती अत्यल्प ज्ञानमात्रा पण जो व्यञ्जनावग्रहनी कोटिमां गणाती होय; तो दर्शननो व्यपदेश पामी शके अेवी अेनाथी पण अल्प ज्ञानमात्रा कई रीते सम्भवे ?[२] २. 'अर्थावग्रहमां अव्यक्त सामान्यनुं ग्रहण होवाथी अने दर्शन महासामान्यनुं ग्राहक छे अेवी प्रसिद्धि होवाथी दर्शन अे अर्थावग्रहनुं नामान्तर ज छे,' अे उकेलमां बे तकलीफ छे : अेक तो आ रीते दर्शन व्यञ्जनावग्रह अने ईहानी वच्चे गोठवातुं होवाथी ज्ञानोपयोगनी अन्तर्गत अेने समजवुं पडे, जे नियमविरुद्ध छे. अने बीजुं, अर्थावग्रह अेकसामयिक होय छे अने दर्शनने अन्तर्मुहूर्तकालीन कहेवामां आव्युं छे. ३. 'ईहा सुधीनी अन्तर्मुहूर्तकालीन प्रक्रिया दर्शन[३] छे; कारण के कोई पण ज्ञान आकार वगरनुं सम्भवतुं नथी. अने आ ज्ञानप्रक्रियामां वस्तुनो आकार तो अपाय वखते ज रचाय छे. अने तेथी ज साकार अेवा अपाय-धारणा ज्ञान छे.' आवा विभागनी अयुक्तता सन्मतिटीकामां[४] आ रीते जणाववामां आवी छे : 'अवग्रह-ईहा जो दर्शन छे तो अेमनी मतिज्ञानना भेद तरीके गणतरी शा माटे ? अेमने ज्ञानावरणीयना क्षयोपशमथी जन्य मानवा के दर्शनावरणीयना ?' आम, आगमिक प्रक्रियामां दर्शनोपयोग बाबते मूंझवण रहे छे.

आ मूंझवण टाळवा तार्किकोअे 'ईहा सुधीनी प्रक्रिया दर्शन' अे बहुमान्य अभिप्रायने पकडी आगमिक ईहा सुधीना समग्र तबक्काने 'दर्शन'

---

१. ''दर्शनपूर्वं ज्ञानमिति छद्मस्थोपयोगदशायां प्रसिद्धम् ।''
- ज्ञानबिन्दुगत सन्मति.-२.२२नी टीका

२. ''व्यञ्जनावग्रहप्राक्काले दर्शनपरिकल्पनस्य चाऽत्यन्तानुचितत्वात् । तथा सति तस्येन्द्रियार्थ-सन्निकर्षादपि निकृष्टत्वेनाऽनुपयोगप्रसङ्गाच्च ।'' - ज्ञानबिन्दु

३. वि. भाष्य - ५३६ गाथा

४. सन्मति - २.२३-२४ टीका.

नाम आपी ए तबक्का पछी ज अवग्रहनी प्ररूपणा करी. आमां जो के वि.भाष्य जेवा महान ग्रन्थना निरूपणथी जुदुं पडवानुं थतुं हतुं; पण दर्शननी ज्ञान पूर्वे आवश्यकता, दर्शननुं आन्तर्मौहूर्तिकत्व, अवग्रह–ईहानी मतिज्ञानना भेद तरीके गणतरी व. घणी आगमिक प्ररूपणाओ संगत थई जती हती.[१] व्यञ्जनावग्रहस्थानीय अक्षार्थयोग वखते प्रगटती अत्यल्प ज्ञानमात्राने तो तार्किको गणतरीमां ज लेतां न होवाथी, ए ज्ञान–दर्शन उभयकोटिमांथी बहार रहे ते इष्ट गण्युं. अन्ते जे क्रम गोठवायो ते आ हतो : अक्षार्थयोग → दर्शन → अवग्रह.

३. छद्मस्थनो उपयोगमात्र असंख्य समयनो होय छे.[२] तो अर्थावग्रह एक समयनो कई रीते होय ?[३] अने सामान्यना ग्रहण माटे जो एक समयने पर्याप्त मानीए तो सामान्यना ज ग्राहक दर्शननुं आन्तर्मौहूर्तिकत्व शा माटे कहेवाय छे ? – बनी शके के आवी मूंझवण टाळवा तार्किकोए अवग्रहने आन्तर्मौहूर्तिक गण्यो होय. जो के दर्शन पछी अवग्रहने कल्पीए एटले आपोआप एमां सामान्यविशेषनुं ग्रहण अने ते माटे जरूरी अन्तर्मुहूर्तकालमान आवी ज जाय; माटे दर्शन पछी अवग्रह कल्पवानां जे कारणो छे, ते ज अवग्रहनी भिन्न प्ररूपणानां कारणो छे.

४. 'कंइक छे' एवा बोध पछी तरत 'अहीं शंखना धर्मो छे, नगाराना नथी.' आवी विचारणा शरू न थाय; पण ते माटे एनी पहेलां 'आ शुं हशे ? आ हशे के आ ?' आवा संशयात्मक प्रश्नो ऊभा थवा जरूरी छे – ते समजी शकाय एवुं छे. आगमिक आचार्यो संशयनुं निरूपण नथी करता ते संशयना अप्रामाण्य के तेना ईहाना अन्तर्गतत्वने लीधे होई शके.

---

१. जो के व्यञ्जनावग्रहनो अन्त्य समय ए ज अर्थावग्रह छे – ए एक शास्त्रीय प्ररूपणानी असंगति हजु ऊभी रहे छे.

२. 'च्यवमानो न जानाति'ए शास्त्रीय प्ररूपणाने ''च्यवन एक समयमां थनारी घटना छे, अने छद्मस्थ जीव असंख्य समयमां ज बोध करी शके छे, माटे च्यवनने न जाणी शके' एवी रीते समजाववामां आवे छे. जे आ नियमने प्रमाणित करी आपे छे.

३. वास्तवमां 'अर्थावग्रह एक समयनो होय' ए वातनुं तात्पर्य शुं छे ? ते जाणवा माटे जुओ पृ. २७

५. आनां कारणो तो सद्‌भाग्ये प्र.मी.मां ज आपणने सांपडे छे :[१] १. अपायनुं लांबा काळ सुधी टकवुं अे ज अविच्युति होय तो शा माटे अेने अपायथी अलग गणवी जोइअे ?[२] २. परोक्षप्रमाणान्तर्गत स्मृतिनो प्रत्यक्षप्रमाणना भेद तरीके पुनः उल्लेख कई रीते करी शकाय ? आमांथी बीजी बाबत विशे विचारीअे तो, प्राचीन काळे ५ ज्ञानना निरूपणमां ज आखुं जैन प्रमाणशास्त्र समाई जतुं हतुं. माटे अेमां मतिज्ञानना निरूपण वखते स्मृतिने सांकळी लेवानुं जरूरी हतुं. परन्तु तार्किकयुगमां प्रमाणना प्रत्यक्ष–परोक्ष भेद पड्या अने प्रत्यक्षप्रमाणान्तर्गत ५ ज्ञानमां तमाम प्रमाणभेदो समाई जतां होवा छतां, परोक्षप्रमाणना भेद तरीके ५ ज्ञानथी अलग स्मृति, प्रत्यभिज्ञान व.नुं निरूपण चालु थयुं, त्यारे स्मृतिने प्रत्यक्षप्रमाणमांथी नाबूद करवानुं जरूरी बन्युं. तेम ज प्र.मी.मां करवामां आव्युं छे.

६. आगमिक प्रामाण्याप्रामाण्यव्यवस्था फक्त अने फक्त भावनात्मक हती. मतलब के ज्ञान विषयग्रहणनी रीते साचुं छे के खोटुं अे जोवाने बदले प्रमाता व्यक्ति सम्यग्दृष्टि छे के मिथ्यादृष्टि – अेना पर प्रमाणव्यवस्था अवलंबती हती. अेमां सम्यग्दृष्टिनुं ज्ञानमात्र, पछी अे संशय होय तो पण, प्रमाण ज गणातुं हतुं. माटे व्यञ्जनावग्रहने पण प्रमाण ज गणवामां आवे तेमां नवाई नथी.[३] आगमिक व्यवस्था मुजब अप्रमाण तो मिथ्यादृष्टिनुं ज ज्ञान हतुं; जे विषयग्रहणनी दृष्टिअे साचुं पण होई शके. जो के आनी पाछळ पण अेक चोक्कस तर्कदृष्टि तो काम करती ज हती[४], पण अेने ज्ञानना स्वरूप साथे सीधी लेवादेवा नहोती.

तार्किकयुगमां 'जेनाथी वस्तुनो यथार्थ निश्चय थाय ते प्रमाण' आवा तात्पर्यवाळी प्रमाणव्याख्याओ बंधाई. आमां प्रमाणव्यवस्था विषयग्रहण पर निर्भर हती. माटे तेमां वस्तुनिश्चयथी रहित व्यञ्जनावग्रह के तत्स्थानीय अक्षार्थयोगने प्रमाण गणवानी गुंजाईश ज नहोती.

---

१. प्र.मी. – १.१.२९ टीका

२. आ कारणनी अयथार्थतानी चर्चा माटे जुओ पृ. ३६

३. जो के तार्किकयुगमां पण आगमिक आचार्यो 'व्यञ्जनावग्रह अप्रमाण होय तो तज्जन्य अर्थावग्रहादि तमाम ज्ञानो अप्रमाण बनशे' अेवा तर्कना आधारे व्यञ्जनावग्रहने प्रमाण गणावता हता.

४. आ तर्कदृष्टि माटे जुओ वि.भाष्य गाथा ११५

दर्शन पण बधे 'कंइक छे' एवो समान बोध करावतुं हतुं. माटे एमां सम्यक् के असम्यक् एवा भेद पाडवा सम्भवित न होवाथी दर्शनने पण प्रमाणकोटिनी बहार मूकवामां आव्युं. आम तार्किक अने आगमिक प्रमाण-व्यवस्थामां भेद पड्यो.[१]

७. व्यञ्जनावग्रह शब्द प्राप्यकारी इन्द्रियना पोताना विषय साथेना प्रारम्भिक संयोगमां रूढ हतो. तार्किको छए इन्द्रियमां प्रारम्भिक सम्बन्धनी अपेक्षा राखता हता. माटे तेओए ए प्रारम्भिक सम्बन्ध (प्राप्यकारीमां संयोग, अप्राप्यकारीमां वैज्ञानिक) माटे अक्षार्थयोग, विषयविषयिसन्निपात व. शब्दो वापरवा पड्या. अने तेथी बे अवग्रहने जुदा पाडवा 'व्यञ्जन' अने 'अर्थ' विशेषणनी[२] जरूर न रही.

आगमिक व्यवस्था मुजबना अव्यक्त सामान्यना ग्राहक अर्थावग्रहमां बहु-बहुविधादि अमुक भेदोनी संगति नहोती थती. बीजी तरफ 'सामान्यथी अवगृहीत अर्थना (= अर्थावग्रहना विषयभूत अर्थना) विशेषनिर्णय माटे थती विचारणा' एवुं लक्षण धरावती ईहा अपाय पछी पण थई शके ते माटे अपायने अर्थावग्रह बनाववो जरूरी हतो. तेथी अपायने 'व्यावहारिक अर्थावग्रह' नाम आपी[३], तेमां बह्वादि भेदोनी संगति करी, अर्थावग्रहमां भेदोनी संगति अने अपाय पछीनी ईहा ए बन्ने प्रश्नोनो हल लाववामां आव्यो. आम करवामां प्रथम अर्थावग्रहने आपोआप 'नैश्चयिक' विशेषण लागी गयुं. तार्किक व्यवस्थाना प्राथमिक विशेषोना ग्राहक अवग्रहमां तो तमाम भेदो सीधेसीधा घटी शके तेम होवाथी तेमज ईहानी व्याख्या पण 'निर्णीत अर्थना विशेष विशेषोना निर्णय माटे थनारी विचारणा' एवी करवामां आवी होवाथी; तार्किकोए अपायने अर्थावग्रह तरीके कल्पवो जरूरी न हतो. माटे तेमां अवग्रह एक ज प्रकारनो रह्यो.

---

१. आ बाबतनी वधु स्पष्टता माटे जुओ प्र.मी.गत दर्शनशब्द परनी पं. सुखलालजीनी टिप्पणी.

२. आ विशेषणोना तात्पर्य माटे जुओ पृ. २८ टि. १

३. वि.भाष्य - गाथा २८३-२८८

उपलब्ध थती बे परम्परा वच्चेनी चर्चा :

अवग्रहमां प्राथमिक विशेषोनुं ग्रहण होय ए पक्ष बहु प्राचीन काळथी अस्तित्व धरावे छे. वि.भाष्यमां जे विस्तारथी आ मतने सम्बन्धित चर्चा छे[१] ते जोतां श्रीजिनभद्रगणिना समय सुधीमां आ मते बहु ऊंडां मूळियां नांखी दीधां होवानुं जणाय छे. आ पक्षना टेकेदारो पासे महत्त्वनो आधार होय तो ए नन्दीसूत्रगत अवग्रहादिविषयक पाठनो हतो. आ पाठ परथी अवग्रहमां अव्यक्त-सामान्यनुं नहीं; पण प्राथमिक विशेषोनुं ग्रहण होय एवुं सीधेसीधुं फलित थतुं हतुं. नोंधपात्र वात ए पण छे के दिगम्बर परम्परा जे अवग्रह पूर्वे दर्शननुं अस्तित्व पहेलेथी स्वीकारती आवी हती,[२] ते पण आ पाठना आधारे साबित करी शकाय तेम हतुं.[३]

नन्दीसूत्रमां श्रावणप्रत्यक्षनी उत्पत्ति वर्णवतो पाठ आम छे **:** ''**से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणेज्जा, तेणं सद्देत्ति उग्गहिए, न उण जाणइ के वेस सद्देत्ति....** ।'' आमां ''**तेणं सद्देत्ति उग्गहिए**'' ए वाक्यनो तार्किकोए ''तेण (= प्रमाता व्यक्तिए) शब्द एवो अवग्रह कर्यो'' आवो अर्थ करी, अवग्रहमां शब्दत्व जेवा प्राथमिक विशेषोना ग्रहणने पण नकारनारी आगमिक परम्परा सामे वांधो ऊठाव्यो.

आनी सामे श्रीजिनभद्रगणिए आपेलो जवाब आ मुजब छे **:**[४] ''शब्द एवो अवग्रह कर्यो' एवुं नन्दीसूत्रना पाठ परथी भले जणातुं होय; पण एनुं तात्पर्य वास्तवमां जूदुं ज होवुं जोईए. कारण के १. 'आ शब्द छे' ए ज्ञान वाचक शब्दना उल्लेखपूर्वकनुं छे. अने वाचक शब्दनो उल्लेख अन्तमुर्हूर्त सिवाय सम्भवे नहीं. तो एकसामयिक अर्थावग्रहमां आ बोध घटे ज कई रीते ? २. 'आ शब्द छे' एवा बोध माटे रूपादिनो व्यवच्छेद आवश्यक छे अने आ व्यवच्छेद ईहा वगर थाय नहीं. व्यञ्जनावग्रह अने अर्थावग्रह वच्चे काळव्यवधान

१.-४. वि.भाष्य - गाथा २५२-२८८

२. ''विषयविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति, तदनन्तरमर्थस्य ग्रहणमवग्रहः'' - सर्वार्थसिद्धि - १.१५, त.वा. - १.१५.१

३. ''अव्वत्तं सद्दं सुणेज्जा'' ए वाक्य दर्शननुं अस्तित्व सूचवे छे एम मानी शकातुं हतुं.

ज न होय तो आ ईहानो काळ क्यांथी लाववो ? ३. 'आ शब्द छे' अे साकार ज्ञान छे अने अर्थावग्रह निराकार होय छे. ४. अर्थावग्रहमां पण विशेषोनुं ग्रहण मानो अने अपायमां तो विशेषोनुं ग्रहण होय ज छे – तो अे बन्ने वच्चे भेदरेखा कई रीते दोरवी ? विशेषोनी न्यूनाधिकताने आधारे पण बन्नेने जुदा पाडवा शक्य न बने; कारण के छद्मस्थना कोई पण ज्ञानगत विशेषो कोईकनी अपेक्षाअे थोडा अने कोईकनी अपेक्षाअे वधारे होय छे. ५. जो अर्थावग्रहमां विशेषोनुं ग्रहण मानो तो आ विशेषो केटला ? अेनो नियामक कोई न होवाथी 'आ शंखशब्द छे' अेवो बोध पण अेमां थई जवानी आपत्ति आवशे.''

वि.भाष्यमां अपायेलां उपरनां कारणोनो तार्किको द्वारा प्रतिवाद करवामां आव्यो होय अेम जणातुं नथी. छतांय तार्किको वि.भाष्यनी रचना पहेलां अने पछी अेक सरखी रीते आगमिक प्ररूपणाथी भिन्न निरूपण करता रह्या छे अे सूचवे छे के आ कारणो अवश्य विचारणीय छे. माटे वस्तुस्थितिने केन्द्रमां राखी विचारतां जे जणायुं ते अहीं क्रमशः नोंधवामां आवे छे :

१[१]. तार्किको अवग्रहने अेक समयनो मानता ज न होय तो तेओनी सामे आ दलीलनो अर्थ नथी. तो पण धारो के मानी लईअे के अवग्रह अेक समयनो ज मानवो जोईअे; पण खुद आगमिक आचार्यो अेने अेक समयनो स्वीकारी शके खरा ? ना, शक्य ज नथी. कारण के ज्ञानमात्र स्वसंविदित छे[२] अेवुं जैन परम्परा दृढपणे माने छे. अने एकसामयिक घटनाने छद्मस्थ जीव संवेदी न शके अे पण तेने मान्य छे. हवे, अर्थावग्रह अेक समयनो ज होय तो अेनुं संवेदन कई रीते शक्य बने ?

वास्तवमां अर्थावग्रहने अेक समयनो कहेवा छतां अेनुं स्वसंवेदन[३] स्वीकारनारा आगमिकोनुं कथयितव्य आ छे : इन्द्रिय–अर्थना संयोग साथे ज प्रगटेली अत्यल्प ज्ञानमात्रा ज वृद्धि द्वारा अन्तर्मुहूर्तकाळे 'कंइक छे' अेवो बोध

---

१. पृ. २६ पर दर्शावेलां कारणोनो आ क्रमांक छे.

२. ''न हि काचित् ज्ञानमात्रा साऽस्ति, या न स्वसंविदिता नाम ।'' – प्र.मी.–१.१.३ टीका

३. ज्ञान विषयनी जेम पोताने पण जाणे एने स्वसंवेदन कहेवामां आवे छे.

करवा जेटली परिपक्व[१] बने छे. आ परिपक्वता पण कंई ते ज क्षणे प्रगटी एवुं नथी; पण घणी क्षणोथी धीमे धीमे थती आवे छे एम मानवुं पडे. अग्निथी भात रंधाय एवुं ज अहीं समजवानुं छे. आमां परिपाकनी प्रक्रियानो काळ ए व्यञ्जनावग्रह छे अने परिपक्वतानो काळ ए अर्थावग्रह छे. आमां आपणे एक दृष्टिए जोईए तो चरम परिपक्कता ज अर्थावग्रह गणाय; अने अर्थावग्रहने एक समयनो कहेवो पडे. परन्तु आपणे जो न्यूनाधिक परिपक्वतावाळी तमाम क्षणोने ध्यानमां लईए; अने वास्तवमां एम ज करवुं जोईए, नहीं तो सहेज पण ओछो रंधायेलो भात रंधाया वगरनो गणाय; तो परिपक्कता-अर्थावग्रह- 'कंइक छे' एवो बोध अन्तर्मुहूर्तकालीन ठरे छे. तार्किकोए कदाच आ वस्तुस्थितिने नजर समक्ष राखी छे.

रही वात 'आ शब्द छे' एवा बोधमां वाचक शब्दना उल्लेखनी. 'कंइक छे' एवो बोध शब्दोल्लेख वगर सम्भवे, तो 'शब्द छे' एवा बोधमां शब्दोल्लेखनी अनिवार्यता शा माटे ? आपणने क्यारेक 'शब्द छे' एवो शब्दात्मक उल्लेख थया वगर सीधो 'कागडो बोले छे' एवो शब्दोल्लेखवाळो बोध नथी थतो ? आ वस्तु ज सूचवे छे के तेनी पूर्वे 'शब्द छे' एवो बोध शब्दोल्लेख वगर थयो हतो. एवुं समाधान पण अहीं न सूचवी शकाय के आपणने ज्यारे 'कागडो बोले छे' एवा शब्दोल्लेखवाळो बोध ध्यानमां आव्यो, त्यारे तेनी पहेलां थवो जरूरी एवो 'शब्द छे' एवो बोध शब्दोल्लेख साथे ज थयो हतो, पण शीघ्रताने लीधे आपणने खबर न पडी; कारण के शब्दोल्लेख ए जल्दी ध्यानबहार जाय एवी वस्तु नथी. टूंकमां, वाचक शब्दना उल्लेखने लीधे ज 'आ शब्द छे' एवा बोधना अर्थावग्रहकालीन अस्तित्वनो निषेध न करी शकाय.

---

१. आ व्यक्तता-परिपक्वतानी साथे ज पुद्गलो 'अर्थ' रूपे गृहीत थाय छे; मतलब के तेमनी ज्ञानना विषय तरीके स्थापना थाय छे. आ व्यक्तता आवतां पहेलां पुद्गलो पुद्गल तरीके ज गृहीत थाय छे, कोइ चोक्कस अर्थ रूपे नहीं, तेथी ए धीमे धीमे प्रगटता जतां पुद्गलो 'व्यञ्जन' तरीके ओळखाय छे. जेनी व्यञ्जना - प्रगटीकरण थाय ते व्यञ्जन एवो अत्रे भाव छे. आ अर्थ अने व्यञ्जननो अल्प बोध अनुक्रमे अर्थावग्रह अने व्यञ्जनावग्रह तरीके ओळखाय छे. अर्थनी विशद व्याख्या माटे जुओ तत्त्वार्थ - १.१७ टीकाओ.

२. 'कंइक छे' अेवो बोध सत्ता–महासामान्यना ग्रहणरूप गणायो छे. आ बोध माटे असत्त्वनो व्यवच्छेद जरूरी नथी ? जो आ व्यवच्छेद करनारी विचारणाने ईहानो अलग दरज्जो न अपातो होय; तो 'आ शब्द छे' अेवा बोध माटे जरूरी रूपादिना व्यवच्छेदने करनारी विचारणाने पण ईहानो अलग दरज्जो न अपातो होय अेवुं न बने ?

३. आपणे अनुभवथी जोइअे तो आपणा माटे अपायथी ज व्यवहारिक व्यक्तता आववानी चालु थाय छे. कारण के 'कागडो बोले छे' अेवा बोध पहेलां चालेली विचारणा के ते पहेलां थयेलुं सामान्य–ग्रहण क्यां आपणने खबर ज पडे छे ? अेटले ते वखते थयेलुं 'शब्द छे' अेवुं शब्दत्वरूप सामान्यनुं ग्रहण अव्यक्त जेवुं ज रहेतुं होवाथी, 'अवग्रहमां अव्यक्त सामान्यनुं ग्रहण थाय छे.[१] अेवा शास्त्रीय नियम साथे तार्किक प्ररूपणामां कोई विसंवादिता नथी.

खरेखर तो अवग्रह निराकारोपयोगरूप होय अेम कहेवामां आगमिकोने ज मुश्केली ऊभी थाय तेम छे. कारण के निराकारोपयोग अेटले दर्शन अेवी सर्वत्र प्रसिद्धि छे अने अवग्रह तो मतिज्ञानरूप साकारोपयोगनो भेद छे.

४–५. सौथी प्राथमिक विशेषोनो ग्राहक अवग्रह – अेवुं नियमन पण करी शकाय छे अने द्वितीय कक्षाना विशेषोना ग्राहक अपायथी तेने अे रीते अलग पण पाडी शकाय छे.

आ अेक अवग्रहना स्वरूपविषयक भिन्नता सिवाय तार्किक परम्परागत अन्य कोई भिन्नता विशे आगमिकोअे चर्चा के प्रतिवाद कर्या होवानुं जणातुं नथी ते नोंधपात्र छे. अवग्रह पूर्वे दर्शनना अस्तित्वनुं पण, व्यञ्जनावग्रह अने अर्थावग्रह वच्चे काळव्यवधान न होय अे अेकमात्र शास्त्रीय नियमना आधारे निरसन करवामां आव्युं छे.

आगमिक - तार्किक परम्परानो सम्भवित समन्वय

बन्ने परम्परानां निरूपणने साथे जोईअे तो –

---

१. ''अर्थावग्रहेऽव्यक्तशब्दश्रवणस्यैव सूत्रे निर्देशाद्'' – जै.त. – परि. ८

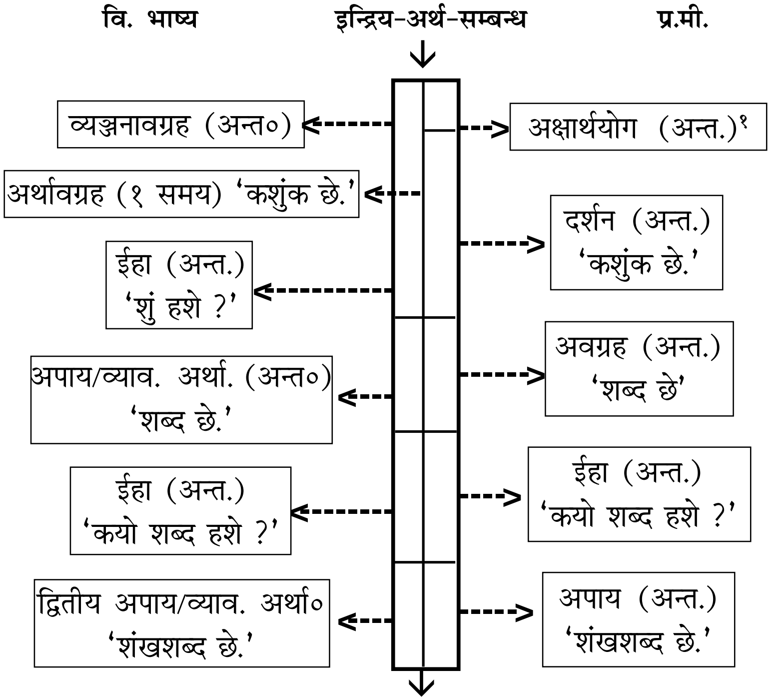

उपरना कोष्टकथी ज जणाय छे के बन्ने निरूपणगत भिन्नता परिभाषा अने तबक्काओनी वहेंचणी परत्वे ज छे; वस्तुस्थिति तो बन्नेने सरखी ज स्वीकार्य छे. मुख्यताअे बे मुद्दामां बधी भिन्नता समाई जाय छे : १. अवग्रह पूर्वे दर्शननुं होवुं के न होवुं. २. अवग्रहमां अव्यक्त सामान्य के प्राथमिक विशेषोनुं ग्रहण मानवुं. आ मतभेदना समाधान माटे प्रयास करीअे तो –

अपायनुं अेक मुख्य कार्य वाचकशब्दना उल्लेखनुं छे[२], माटे आपणने थनारो शब्दोल्लेखवाळो निश्चयमात्र अपाय गणाय छे. आ शब्दोल्लेखवाळो बोध

१. अक्षार्थयोगनुं काळमान प्र.मी.मां नथी जणाव्युं; पण 'कंइक छे' अेवो बोध थवामां अन्तर्मुहूर्त जेटलो समय पसार थई जाय अेम समजीने अेनुं अन्तर्मुहूर्त काळमान लखवामां आव्युं छे. आ अन्तर्मुहूर्तने व्यञ्जनावग्रहथी अेटला माटे ओछुं कल्प्युं छे के 'कंइक छे' अेवो बोध अस्पष्टपणे अर्थावग्रहथी पूर्वे शरू थई जतो होवो जोईअे अेवुं समजाय छे.

२. ''अपायधृती वचनपर्यायग्राहकत्वेन... ज्ञानमिष्टम् ।'' – वि.भाष्य-गाथा ५३६ टीका

अेकसरखो नथी होतो ते अनुभवसिद्ध छे. आपणने घणीवार त्रीजा पगथियानो 'कागडो बोले छे.' अेवो ज सीधो अपाय – शब्दोल्लेखवाळो बोध थाय छे. तो घणीवार 'शब्द छे – अवाज आवे छे' अेवो अपाय पण थाय छे, जे बीजा पगथियानो बोध छे. 'कंइक छे' अेवो प्रथम पगथियानो बोध पण शब्दोल्लेख साथे, विशेषो न नक्की थई शके तो, अपायमां भासित थई शके छे. आथी नक्की थाय छे के शब्दोल्लेखवाळो प्रथम बोध – अपाय आटला ज विशेषोना उल्लेखवाळो होय अेवुं नियमन शक्य नथी. अने जो अे शक्य न होय तो अपायथी अेक पगथिया जेटलो नीचलो बोध – अर्थावग्रह आटलो ज बोध करे अे नियमन पण शक्य नथी बनतुं. टूंकमां 'कंइक छे' अेवो पण अवग्रह थई शके छे अने 'शब्द छे' अेवो पण अवग्रह थई शके छे. अे ज रीते प्रथम अपाय 'शब्द छे' अेवो पण थई शके छे (–अवग्रह 'कंइक छे' अेवो होय तो) अने 'कागडो बोले छे' अेवो पण थई शके छे (–अवग्रह 'शब्द छे' अेवो होय तो). अवग्रह अने अपाय बन्ने 'कंइक छे' अेवा पण कोईकवार होय छे.

हवे आपणे ध्यान आपीशुं तो जणाशे के महदंशे आपणे अवग्रहमां ज बीजा पगथिया सुधी पहोंची जता होईअे छीअे; अने ते पण अेटले नक्की थाय छे के 'गुलाब महेके छे' (–कंइक छे → गन्ध छे → गुलाबनी गन्ध छे), 'घडो छे' (– कंईक छे → रूप छे → घटरूप छे) अेवो त्रीजा पगथियानो ज शब्दोल्लेखसहितनो बोध आपणने प्रथमथी जणाय छे. तार्किकोअे आ महदंशे थनारी प्रक्रिया अनुसार ज निरूपण करवानुं उचित धार्युं होवुं जोइअे. अने अेटले तेओअे पहेला पगथियानो बोध दर्शनमां, बीजा पगथियानो बोध अवग्रहमां अने त्रीजा पगथियानो बोध अपायमां गोठव्यो होई शके. पण तेनो अल्पांशे थनारी 'अवग्रहमां पहेला पगथियानो बोध अने अपायमां बीजा पगथियानो बोध अेवी' प्रक्रिया के तदनुसार आगमिको द्वारा करवामां आवता निरूपण साथे कोई विरोध नथी.

अत्रे विषयान्तर थतुं होवा छतां अेक वात नोंधवी रही : मतिज्ञानना बह्वादि भेदो कई रीते घटे ? अेम पूछवामां आवे तो आगमिको कहेशे के व्यञ्जनावग्रह अने अर्थावग्रहमां उपचारथी[१] अने ईहाथी मांडीने वास्तविकताअे

आ भेदो घटे छे. हवे आपणे आगमिक व्यवस्था तपासीअे तो जणाशे के अेमां प्रथम ईहा 'आ शब्द छे के अशब्द' अेवी ज होय छे. प्रथम अपाय-धारणा पण 'शब्द छे' अेवां नक्की ज होय छे. तो अेमां पण आ भेदो कई रीते घटवाना ? आ भेदो स्वरूपभेद शक्य होय तो ज घटे, अने आगमिक व्यवस्था मुजब तो प्रथम ईहादिमां ते शक्य नथी. अेमां तो वधुमां वधु द्वितीय ईहाथी ज आ भेदो वस्तुतः घटी शके. अने व्यञ्जनावग्रह, अर्थावग्रह, प्रथम ईहा-अपाय-धारणा आ बधामां उपचारथी अथवा तर्कथी[२] ज घटाववा पडे. तार्किक व्यवस्था तो प्रथम अपाय ज 'शंखशब्द छे' अेवुं स्वीकारती होवाथी, अेमां प्रथम ईहाथी ज आ भेदो वास्तविक रीते घटी शके छे अने अे रीते आगमिकोअे आपेलो अने फकरानी शरुआतमां लखेलो उत्तर पण संगत थाय छे.

प्र.मी.ना निरूपणनी केटलाक जैन ग्रन्थोनां निरूपण साथे तुलना

प्र.मी. गत मतिज्ञानोत्पत्तिना निरूपणमां आगमिक प्ररूपणाथी भिन्न बाबतो विशे अन्य ग्रन्थो शुं कहे छे ते जोईअे :

१. अवग्रह पूर्वे चक्षु अने मन माटे पण अक्षार्थयोग (-इन्द्रियना विषय साथेना सम्बन्ध)नी अपेक्षा राखवी.

प्र.न., सर्वार्थसिद्धि, त.वा. जेवा मोटा भागना[३] तार्किकयुगना ग्रन्थोमां बधी इन्द्रियो माटे विषयविषयिसन्निपातनुं[४] निरूपण छे. लघीयस्त्रयमां[५] आना माटे वापरेलो 'अक्षार्थयोग' शब्द ज प्र.मी.मां मळे छे ते ध्यानार्ह छे. ज्ञानबिन्दुमां उपाध्यायजीअे पण प्रश्न उठाव्यो छे के जो प्राप्यकारी इन्द्रियमां व्यञ्जनावग्रह

१-२. वि.भाष्य-गाथा ३१० टीका, अत्रे कारणमां वैशिष्ट्य न होय तो कार्यमां पण न आवे तेवो तर्क आपवामां आव्यो छे.

३. जै.त.जेवा केटलाक तार्किक ग्रन्थो आ बाबतमां लगभग आगमिक निरूपणने ज अनुसरे छे. अेथी अहीं 'मोटाभागना' अेम लखवामां आव्युं छे. आगळ पण तमाम तार्किको विशेनी वातमां जै.त. जेवा ग्रन्थोने न गणवा.

४. जुओ पृ. २१-टि. २, पृ. २६-टि. २

५. अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधीः (लघीयस्त्रय - ५-)

करणांश[१] बनतो होय तो चाक्षुष अने मानस प्रत्यक्षमां करणांश कोण ?[२] तेओए आना जवाब तरीके लब्धीन्द्रियनी स्वविषयने ग्रहण करवा तरफनी उन्मुखताने रजू करी छे. आ उन्मुखताने आपणे चक्षु–मनना स्वविषय साथेना वैज्ञानिक सम्बन्धरुप समजी शकीअे. अने अे रीते ज्ञानबिन्दुगत निरूपण पण प्र.मी. साथे संवादी छे.

२. अक्षार्थयोग अने अवग्रह वच्चे दर्शन थाय छे.

तमाम तार्किको आवुं ज निरूपण करे छे.[३] वि.भाष्यनी रचना पूर्वे पण दर्शनने बदले 'आलोचन' शब्द वापरीने कोई अेवुं ज निरूपण करतुं हशे अेम तेमां करेली आ मतनी समालोचना[४] परथी जाणी शकाय छे.

३. अवग्रह आन्तर्मौहूर्तिक होय छे.

अन्य कोई तार्किक ग्रन्थमां साक्षात् शब्दोमां आवुं निरूपण नथी मळतुं; कारण के अवग्रहादिना काळमानने दर्शावती वि.भाष्यनी ''उग्गह इक्कं समयं...'' अे गाथा (३३३) अेटली प्रसिद्ध अने मान्य हती के अवग्रहने अेमां देखाडेला अेक समयना काळमानने स्थाने आन्तर्मौहूर्तिक कहेवानुं जल्दी सम्भवित नहोतुं. पण अवग्रहमां सामान्यने बदले विशेषोनुं ग्रहण माननारा तार्किको अेने अन्तर्मुहूर्तकालीन समजता ज होय अे जाणी शकाय तेवुं छे.

४. ईहा संशयपूर्वक ज होय छे.

आ वात बधा तार्किक ग्रन्थोने संमत छे.[५] विचारवा जेवी वात अे छे के संशयनो ज्ञानोत्पत्तिना क्रममां समावेश केम नथी ? प्र.मी.नी जेम प्र.न.

---

१. जे कारण असाधारण होय अने पोते कोइकने जन्मावी अेना द्वारा पोताना निर्धारित कार्यने पूरुं करतुं होय ते कारण 'करण' कहेवाय छे. अने आ करणथी जन्य तेमज कार्यनी उत्पादक वस्तु 'व्यापार' कहेवाय छे. व्यञ्जनावग्रह, अर्थावग्रह–ईहारूप व्यापार द्वारा अपायरूप फळ पेदा करतो होवाथी अे करण गणाय छे.

२. ''ननु व्यञ्जनावग्रहः .. नाऽप्राप्यकारिणोश्चक्षुर्मनसोरिति कः करणांशो वाच्यः ? – ज्ञानबिन्दु परि.३८

३. जुओ पृ. २१–टि. २, पृ. २६–टि. २

४. गाथा २७४–२७९

५. ''संशयपूर्वकत्वादीहायाः'' – प्र.न. – २.११, ''सति हि संशये ईहायाः प्रवृत्तिः'' त.वा.– १.१५.१३

टीकामां पण[१] आना कारण तरीके संशयना अप्रामाण्यने रजू करायुं छे. तात्पर्य एम समजाय छे के मतिज्ञानरूप एक सळंग ज्ञानोपयोग भले प्रमाणरूप होय; पण एने तबक्काओमां विभाजित करो तो कोइक तबक्को स्वतन्त्र रीते अप्रमाण पण होय. अने एटले मतिज्ञानरूप प्रमाणना भेद तरीके एनी गणतरी पण न थाय.

त.वा.कार तो अवग्रह-ईहाने अप्रमाण मानवा छतां एनो ज्ञानोत्पत्तिना क्रममां समावेश करे छे. माटे संशयना असमावेशनुं कारण तेओए जूदुं जणाव्युं छे[२] : ईहा संशयपूर्वक ज होय छे, माटे ईहाना समावेशथी ज एनो समावेश पण थई जाय छे. अने तेथी संशयनो अलगथी समावेश जरूरी नथी.

५. अक्षार्थयोग अने दर्शन अप्रमाण छे, अने अवग्रहथी शरु थती तमाम ज्ञानप्रक्रिया प्रमाण छे.

प्र.न.मां पण मतिज्ञानना भेदो अवग्रहथी ज देखाडाया छे,[३] विषयविषयिसन्निपात अने दर्शन देखाड्या छे खरा; पण ते अवग्रहना उत्पादनी प्रक्रिया माटे, मतिज्ञानना भेद तरीके नहीं. माटे प्र.न.कारने पण प्र.मी.मां दर्शावेली प्रमाणव्यवस्था मान्य होय तेम जणाय छे.

त.वा.मां अवग्रह अने ईहाने पण अप्रमाण गणावाया छे. वास्तविक ज्ञान ज प्रमाण कहेवाय, अने अवग्रह पछी तो संशय पेदा थाय ज छे, माटे अवग्रह निश्चय न करावी आपतो होवाथी अप्रमाण छे. ए ज रीते ईहा पण निर्णयात्मक न होवाथी अप्रमाण छे - आवां कारणो त्यां रजू करायां छे,[४] जे गेरवाजबी लागे छे. कारण के घणा अपायो पछी संशय जागे छे, तो अपायोने पण अप्रमाण गणवा ? नहीं ज, कारण के तार्किकमते स्वविषयमां सम्यक् निर्णय कराववो ए ज प्रामाण्य छे. अने आवुं प्रामाण्य जेम अपायमां घटे छे, तेम सामान्यना ग्राहक अवग्रहमां पण घटे छे. विशेष विशेषोनो संशय कंई तेनी पूर्वेना सामान्य के प्राथमिक विशेषोना ग्राहक ज्ञानने अप्रमाण बनावी

---

१. ''संशयस्याऽप्रमाणत्वादवग्रहादिषु पाठो न कृतः'' - प्र.न.-२.११ बालबोधिनी.

२. ''अर्थगृहीतेः सूत्रे संशयो नोक्तः'' - त.वा.-१.१५.१३

३. प्र. न. - २.७-११

४. त. वा. - १.१५.६

शके नहीं. अे ज रीते ईहा पण स्वविषयमां – अन्वयधर्मोनां अस्तित्व अने व्यतिरेकधर्मोना अभावमां निर्णयरूप होवाथी[१] प्रमाण ज छे.

६. अवग्रहमां प्राथमिक विशेषोनुं ग्रहण होय छे.

पूर्वे जोयुं तेम तार्किको तो अेवुं ज माने छे. आ मुद्दे खास तो तत्त्वार्थभाष्य परनी श्रीसिद्धसेनगणिनी टीका ध्यानार्ह छे. अेमां एक बाजु १.१५नी टीकामां तार्किक परम्परा मुजब, तो बीजी बाजु १.१६-१७नी टीकामां आगमिक परम्परा मुजब अवग्रहादिनुं निरूपण छे ! आ वस्तु अेम तो आपणने मूंझवे तेवी छे, पण जराक ध्यान आपीअे तो श्रीसिद्धसेनगणिने खुदने शुं मान्य हशे ते नक्की करवुं अघरुं नथी. आपणे जो तेमनी विचारधाराने चीवटथी तपासीशुं तो आपणने तेओ आगमिक परम्पराना जबरदस्त समर्थक ज जणाशे. सीधी रीते केवलज्ञान-दर्शननो युगपद् उपयोग प्ररूपता तत्त्वार्थभाष्यनो पण तेओअे जे रीते युगपद्वादनी झाटकणी काढवापूर्वक आगमिक-क्रमवादपरक ज अर्थ कर्यो छे[२] अे जोतां तेओनी आगमिक प्ररूपणाओमां दृढ श्रद्धा सहेजे जणाशे. एटले आपणे मानवुं जोईअे के अवग्रहादिना स्वरूपनो सरळ ख्याल आपवा माटे ज १.१५नी टीकामां तार्किक परम्परा मुजब निरूपण कर्युं छे; पण वास्तवमां तेओने सम्मत तो आगमिक व्यवस्था ज छे, के जे तेओअे १.१६-१७नी टीकामां देखाडी छे. उपाध्यायजीअे तत्त्वार्थभाष्य-विवरणमां १.१५ना व्याख्यानमां, श्रीसिद्धसेनगणिना आ सूत्रना व्याख्यानमां आ तफावत देखाड्यो छे ते नोंधवा योग्य छे.[३]

७. धारणा अेकमात्र वासना/संस्काररूप छे.

दिगम्बर परम्परा पण धारणाने वासनारूप ज माने छे.[४]

प्र.मी. अने प्र.न. – आ बे लगभग समकालीन प्रमाणशास्त्रोमां जे

---

१. ''न चाऽनिर्णयरूपत्वादप्रमाणत्वमस्याः शङ्कनीयं; स्वविषयनिर्णयरूपत्वात् ।''
– प्र.मी. १.१.२७ टीका

२. तत्त्वार्थ – १.३१ भाष्य – टीका

३. ''... इत्याकारेति टीकाकृतः । सा च व्यावहारिकावग्रहजन्या द्रष्टव्या । नैश्चयिकावग्रहजन्या तु... विशेषावश्यकप्रसिद्धा समुन्नेया ।''

४. ''स एवाऽय' मित्यविस्मरणं यतो भवति सा धारणा ।'' – त.वा. – १.१५.४

नोंधपात्र तफावत छे तेमां अेक धारणाना स्वरूप विशे छे. प्र.न.मां अपायनी लांबा काळ सुधीनी विद्यमानताने ज धारणा गणी छे,[१] के जे अविच्युति नामनो धारणानो प्रकार छे. ज्यारे प्र.मी.कार अविच्युतिने स्थाने वासनाने धारणा गणे छे. आम प्र.मी. अने प्र.न. बन्ने त्रण धारणाने निरूपती आगमिक परम्पराथी जूदा पडवा छतां परस्पर भिन्नता धरावे छे. वासनाने प्रत्यक्षज्ञानरूप सिद्ध करवी अे अघरुं होवाथी प्र.न.कार अेने प्रत्यक्षना भेद तरीके न गणता होय अे बनवाजोग छे.

अविच्युति अपायमां ज समाई जाय छे-[२] अेवा प्र.मी.कारना कथननी सामे उपा. श्रीयशोविजयजीअे तत्त्वार्थभाष्य-विवरणमां[३] स्पष्टता करी छे के अपायनुं लांबा काळ सुधी टकवुं अे ज अविच्युति अेम कहेवाय छे खरुं; परन्तु वास्तवमां 'आ घट छे, आ घट छे' आवी धारावाहिक ज्ञानपरम्परा अविच्युति छे. जेम दीपकलिका नवी नवी उत्पन्न थती होवा छतां सदृशताने लीधे अेक ज ज्योतनो भ्रम थाय छे; तेम नवा नवा निश्चय थता होवा छतां तेओनो आकार अत्यन्त समान होवाथी आपणने अेक ज निश्चय लांबा काळ सुधी टक्यो अेम लागे छे. माटे अविच्युतिनो अपायमां अन्तर्भाव करी शकाय नहीं.

आ उपरान्त अविच्युतिने अपायथी अलग गणवानुं कारण उपाध्यायजीअे जैनतर्कभाषामां[४] अे जणाव्युं छे के तृणस्पर्श जेवा विषयोनी स्मृति आपणने नथी थती, अने अपाय तो त्यां पण थयेलो होय ज छे. आ वस्तु जणावे छे के स्मृति माटे अपाय सिवाय पण कोईक हेतु होवो जोईअे. अने आ हेतु अेटले ज अविच्युति. अपाय बधे सरखो होवा छतां स्मृतिमां पडनारा स्पष्ट, स्पष्टतर व. भेदो पण एमनी कारणभूत अविच्युतिनुं स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध करे छे.

संस्कारने वि.भाष्य-टीकामां स्मृतिज्ञानावरणीयना क्षयोपशमरूप के

---

१. प्र. न. - २.१०

२. "साऽवाय एवाऽन्तर्भूतेति न पृथगुक्ता ।" - प्र.मी. - १.१.२९ टीका

३. १.१५ना अन्तभागमां.

४. जै. त. - परि. १५, १६

आत्मगत शक्तिरूप जणावी तेमां ज्ञानत्वनो उपचार मान्यो छे.[१] ज्यारे प्र.मी., श्लोकवार्तिक[२] व. मां संस्कार स्वयं अज्ञानरूप होय तो अेनाथी स्मृत्यात्मक ज्ञान पेदा न थाय अेम जणावी अेने सीधो ज ज्ञानरूप मानवामां आव्यो छे. लागे छे के – अेकवार वस्तुनो बोध थाय अेटले तेना आवारक कर्मनो क्षयोपशम थयो होवाने लीधे ते बोध अमुक समय सुधी सुषुप्त अवस्थामां आत्मामां पडी रहे छे. बोधनी आ सुषुप्त अवस्था ज संस्कार छे अेम मानी तेओ आवी प्ररूपणा करता हशे.

आम प्र.मी.गत मतिज्ञानोत्पत्तिक्रमनुं निरूपण आगमिक परम्पराने अनुसरतुं होवा छतां, अेने वधु तर्कग्राह्य बनाववानो प्रयत्न करवामां आव्यो छे ते आ निरूपणनी लाक्षणिकता छे. अने आ लाक्षणिकता ज कलिकालसर्वज्ञनी आगवी ओळख छे.

* * *

सन्दर्भसूचि

प्र.मी. – प्रमाणमीमांसा (सटीक), सूत्र १.१.२६–२९. कर्ता – श्रीहेमचन्द्राचार्य, सं. – पं. सुखलालजी संघवी, प्र.– सरस्वती पुस्तक भण्डार, अमदावाद, १९८९

वि.भाष्य – विशेषावश्यकभाष्य (सटीक), गाथा १७८–३५४, कर्ता – श्रीजिनभद्रगणि, टी.– मलधारी हेमचन्द्रसूरिजी, सं. – राजेन्द्रविजयजी, प्र. – बाई समरथ जैन श्वे. मू. ज्ञानोद्धार ट्रस्ट – अमदावाद, वीरसं. २४८९

प्र.न. – प्रमाणनयतत्त्वालोक (बालबोधिनीटीका साथे), सूत्र २.७–१२, कर्ता – वादिदेवसूरिजी, टी. – रामगोपालाचार्य, सं. – पं. वज्रसेनविजयजी, प्र.– भद्रङ्कर प्रकाशन – अमदावाद, वि.सं. २०५७

ज्ञानबिन्दु – परिच्छेद ३५–३८, ४६, ४७, कर्ता – उपा. श्रीयशोविजयजी, सं. – पं. सुखलालजी संघवी, प्र. सिंघी जैन ग्रन्थमाला – अमदावाद, कलकत्ता,

१. ''वासनाऽपि स्मृतिविज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमरूपा तद्विज्ञानजननशक्तिरूपा चेष्यते । सा च यद्यपि स्वयं ज्ञानरूपा न भवति, तथापि.... उपचारतो ज्ञानरूपाऽभ्युपगम्यते ।''

– वि.भाष्य १८९ टीका

२. ''अस्य ह्यज्ञानरूपत्वे ज्ञानरूपस्मृतिजनकत्वं न स्याद् – प्र.मी. – १.१.२९ टीका; ''अज्ञानात्मकतायां तु संस्कारस्येह तस्य वा । ज्ञानोपादानता न स्याद्...''

श्लोकवार्तिक – १.१५.२२

जै.त. – जैनतर्कभाषा, परिच्छेद – ६–१७, कर्ता – उपा. श्रीयशोविजयजी, सं. – पं. सुखलालजी संघवी, प्र. – सिंघी जैन ग्रन्थमाला – अमदावाद, कलकत्ता, १९३८

सन्मतिटीका – ५५३, ६१८ पृष्ठ, कर्ता – श्रीअभयदेवसूरिजी, सं. – पं. सुखलालजी संघवी, बेचरदास दोशी, प्र. RINSEN Book Co., Kyoto, 1984

लघीयस्त्रय (सटीक), कारिका ५–६, कर्ता – भट्ट अकलङ्कदेव, सं. – महेन्द्रकुमार जैन, प्र. – सिंघी जैन ग्रन्थमाला, १९३९ (अकलङ्कग्रन्थत्रयम् अन्तर्गत)

तत्त्वार्थ – तत्त्वार्थाधिगमसूत्र (स्वोपज्ञभाष्य साथे), सूत्र १.१५–१९, कर्ता – श्रीउमास्वाति वाचक

तत्त्वार्थटीका – कर्ता – श्रीसिद्धसेनगणि, सं. – हीरालाल रसिकदास कापडीया, प्र. – देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, १९२६

तत्त्वार्थभाष्यविवरण – कर्ता – श्रीयशोविजयजी उपा., सं. – आ श्रीविजयोदयसूरिजी, प्र. – श्रुतज्ञान प्रसारक सभा – अमदावाद, १९९५

त. वा. – तत्त्वार्थवार्तिक (सटीक), कर्ता – भट्ट अकलङ्कदेव, सं. – महेन्द्रकुमार जैन, प्र.–भारतीय ज्ञानपीठ – दिल्ही, १९९९

श्लोकवार्तिक – तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (सटीक), कर्ता – विद्यानन्दिस्वामि, सं. – मनोहरलाल न्यायशास्त्री, प्र. – सरस्वती पुस्तक भण्डार, अमदावाद, २००२

सर्वार्थसिद्धि – कर्ता – श्रीपूज्यपादस्वामी

नन्दीसूत्र – कर्ता – श्रीदेववाचक

* * *